SUSHANT UNIVERSITY ORGANIZED INTERNATIONAL CONFERENCE ON
"ADVANCES IN MULTIDISCIPLINARY RESEARCH AND INNVOATION" ICAMRI-2023
ON 28-29TH OCTOBER 2023
INTERNATIONAL ADVANCE JOURNAL OF ENGINEERING, SCIENCE AND MANAGEMENT (IAJESM)
July-December 2023, Submitted in October 2023, iajesm2014@gmail.com, ISSN -2393-8048
Multidisciplinary Indexed/Peer Reviewed Journal. SJIF Impact Factor 2023 =6.753

विद्यापति की काव्य संवेदना के अन्तः स्त्रोत और उनका कलात्मक विन्यास का संक्षिप्त विश्लेषण

Suman Kumar, Research Scholar, Dept. of Hindi, Maharaja Agrasen Himalayan Garhwal University
Dr. Brajlata Sharma, Professor, Dept. of Hindi, Maharaja Agrasen Himalayan Garhwal University

सार–

विद्यापति मैथिल कवि थे और मिथिला के रहने वाले थे। मैथिली मागधी प्राकृत से निकली होने के कारण हिन्दी का अंग न होकर बिहारी भाषा के अन्तर्गत आती है। विद्यापति अपनी कोमल कान्त पदावली के कारण ''मैथिल कोकिल'' के नाम से पुकारे जाते हैं और मिथिला निवासियों को इन पर गर्व है। काव्य–भाषा का तात्पर्य काव्य के भाव चित्रों को आधार प्रदान करने वाली वह भक्ति जिसके माध्यम से भाषा की कोटि को श्रेणीबद्ध किया जाता है, अर्थात् जिससे गद्य, बोलचाल की भाषा और काव्य की भाषा में अन्तर को समझा जाता है। काव्य–भाषा, जन–भाषा, या अन्य इतर विधाओं की भाषा से प्रयोगात्मक स्तर पर उच्च कोटि की होती है। काव्य के प्रत्यक्ष व परोक्ष सारे अवयव छन्द, लय, ध्वनि, अलंकार, प्रतीक, बिम्ब, मिथक आदि भाषा की शक्ति तथा सौन्दर्य आचरण हैं। भारतीय साहित्य चिन्तन का अलंकार विधान प्रस्तुत और अप्रस्तुत को प्रायः साथ–साथ लेकर चलने के कारण रचना शिल्प का अंग तो है, पर काव्य–भाषा के विकास में पर्यवसित नहीं हो पाता। प्रतीक और बिम्ब अप्रस्तुत होते हुए भी भाषिक प्रक्रिया में प्रस्तुति में स्थानापन्न हो जाता है। अतः भाषा के अत्यन्त संवदेनशील स्तर पर रुपान्तरित हो जाते है, जबकि अलंकार अपनी स्थिति में अतिरिक्त सजावट के रूप में देखे जा सकते है। भाषा की रचना प्रक्रिया का अभिन्न अंग नहीं बन पाते। अर्थात् काव्य–भाषा में बिम्ब, प्रतीक शब्द अथवा मिथक सजावट कार्य नहीं करते। वरन् भाषा को अर्थवत्ता प्रदानकरते हैं, प्रतीक शब्द मात्र है और इस प्रतीकात्मक शब्द की वास्तविक रचनात्मक परिणति तब होती है, जब वोभाव चित्रों अथवा बिम्बों के रूप में उभर कर काव्य पंक्तियों में परिणत होने लगते है। यह भावों की भाषा की काव्य–भाषा का महत्वपूर्ण अंग है।

प्रस्तावना–

कबीर की तरह विद्यापति ने समाज की रूढियों के विरुद्ध तो अपना रोष व्यक्त नहीं किया और तुलसी जैसे भक्त कवियों की भाँति समाज के कल्याण को अपने काव्य का विषय बनाया। यथास्थान उनके काव्य में सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति हुई है। उनके काव्य की जीवंतता का श्रेय हम इन्हीं सामाजिक सचेतनता को दे सकते हैं। विद्यापति ने सर्वप्रथम जन–सुलभ भाषा में समग्र जीवन को अपनी कृति में अभिव्यंजित किया है। जो साहित्य जन–जीवन को प्रभावित नहीं कर सकेगा एवं जो जन–साधारण द्वारा पठनीय नहीं होगा वह अत्युत्कृष्ट होने पर भी जनप्रियता के गौरव से वंचित ही रहेगा। विद्यापति ने प्रायः सभी पक्षों पर दृ ष्टि डाली है, उन सबसे उनकी सामाजिक–चेतना अभिव्यंजित हुई है। कवि की विरहिणी नायिका विरहाधिक्य के कारण आत्महत्या अथवा पलायन की बात नहीं करती है। जब वह अत्यधिक व्याकुल होती है, तभी विद्यापति उसको प्रिय–मिलन के प्रति आश्वस्त करते हुए देखे जाते हैं।

विद्यापति के रचनाकाल में काव्य–भाषा के रूप में किसी एक भाषा का एकाधिकार नहीं था। काव्य रचना के लिए कई भाषाएँ एक साथ प्रचलित थी। कवि अपनी रूचि के अनुसार किसी भी भाषा को ग्रहण कर काव्य रचना करते थे। विद्यापति ने संस्कृत, अपभ्रंश, मैथिली तीनों भाषाओं में काव्य की रचना की। विद्यापति के युग को भाषा के क्षेत्र में सन्धिकाल कहा जाता है। उनके काव्य में भाषा प्रयोग विधि की श्रेष्ठता को देखकर ही उनको कविराज उपमा से प्रतिष्ठित किया गया।

देसिल बयना" को "सब जन मिट्ठा

कवि अपने आश्रयदाताओं और सुसंस्कृत नागरिकों के साथ–साथ रसिक एवं सहृदय श्रोताओं और पाठकों को भी नही भूले। संस्कृत भाषा में श्रृंगार गीत की रचनाएँ भी खूब हुई। प्रकृति की पृष्ठभूमि पर मानवीय भावों का सुन्दर चित्रण हुआ। कवि विद्यापति ने तत्कालीन ही नहीं, बल्कि प्राचीनकाल के संस्कृत साहित्य का भी अध्ययन अच्छी तरह से किया था। इसीलिए उनकी रचनाओं पर, संस्कृत साहित्य की छाप स्पष्ट है। उनका "शैवेसर्वस्वसार प्रमाणभूत संग्रह" उनके प्राचीन ग्रन्थों के अध्ययन का ही प्रमाण है, शिवपूजा से सम्बन्धित सभी श्लोक प्राचीन ग्रन्थों से ही सग्रहित है। 'भू–परिक्रमा' उनके भौगोलिक ज्ञान का परिचायक है। वहाँ दान वाक्यावली, लिखनावली, विभागसार, दुर्गाभक्तितरंगिणी, स्मृतिकार, नीतितत्वविशारद तथा उनके भक्त कवि होने का परिचायक है। इस प्रकार वैदिककाल से लेकर आज तक काव्य–भाषा के रुप में संस्कृत अक्षुण धारा के रूप में प्रवाहित हो रही है। भारतीयों के समस्त धर्मग्रन्थ, पुराण, रामायण, महाभारत, स्मृतिग्रन्थ, दर्शन, महाकाव्य, नाटक, काव्य, गद्यकाव्य, गीतिकाव्य, आख्यान, साहित्य आदि संस्कृत में ही हैं। इतना ही नहीं व्याकरण, काव्यशास्त्र, गणित, ज्योतिष, छन्दशास्त्र, कामशास्त्र, आयुर्वेद, धनुर्वेद, वास्तुकला, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, छन्दशास्त्र, कोशग्रन्थ तक संस्कृत में है। विज्ञान का ऐसा

कोई अंग नहीं है, जो संस्कृत में उपलब्ध न हो। अर्थात् ज्ञान का इतना सारा अखण्ड भण्डार किसी एक भाषा में छुपा हो, तो कोई भी सहृदय विद्वान कवि उसे प्रभावित होगा। परन्तु क्या चौदहवी शताब्दी में भी संस्कृत बोलचाल की भाषा थी? इस विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है, कि संस्कृत विद्वतजनों की भाषा थी या जनसाधारण की, अधिकांश विद्वान इस पक्ष में है, कि संस्कृत तत्कालीन जनसाधारण की भाषा थी, और उच्च कोटि का साहित्य संस्कृत में ही लिखा जाता था। किन्तु विद्वानों का यह मत अन्तिम सत्य नहीं कहा जा सकता है। यदि संस्कृत 14वीं शताब्दी में बोलचाल की भाषा थी, तो विद्यापति के द्वारा "देसिल बयना" को "सब जन मिट्ठा" कहकर प्रेरित करने की आवश्यकता नहीं पड़ती, क्योंकि प्रकाण्ड संस्कृत पण्डित भी दैनिक व्यवहार में बोलचाल की भाषा का प्रयोग करते थे। सामान्य जन भी संस्कृत बोलने और समझने की क्षमता रखती थी। इसे वर्तमान समय में खड़ी बोली के उदाहरण से समझा जा सकता है, शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली का उपयोग बहुत कम प्रदेशों में होता है। अधिकांश जनता अवधी, ब्रजभाषा, भोजपुरी, मैथिली (अब भाषा) आदि बोलियों का प्रयोग दैनिक व्यवहार में करती है, परन्तु यह सभी साहित्यिक हिन्दी बोलने और समझने की क्षमता रखते है तथा लेखन आदि के साहित्यिक खड़ी बोली का प्रयोग करते है। इसी प्रकार विद्यापति के समय में भी जन सामान्य में संस्कृत बोलने और समझने की क्षमता तो थी, किन्तु दैनिक प्रयोग में बोल चाल की भाषा मैथिली काही प्रयोग किया जाता था। साथ ही शिक्षा ग्रहण सामन्तकाल में सभी मानस द्वारा सम्भव नहीं था।

सुसंस्कृत एवं उद्भट कवि होते हुए भी ऐसी परिस्थिति के उपरान्त मिथिला में विद्यापति बहुत दिनों तक अज्ञात ही रहे। इसका मूल कारण उनका संस्कृत प्रेम था, क्योंकि गत् शताब्दियों तक मिथिला भी संस्कृत का केन्द्र रही, जिस कारण वहाँ भी भाषा के कवि की उपेक्षा रही और मैथिल विद्वान भी मैथिली में कविता करने से कतराते रहे। उनमें धारणा थी, कि कविता की भाषा संस्कृत और प्राकृत है। जिस कारण विद्यापति की पदावली पर पूर्ववर्ती संस्कृत कवियों की काव्यभाषा का प्रभाव पर्याप्त रूप से प्राप्त होता है।कवियों में विशेष रूप से कवि माध, कालिदास, अमरूक, गोवर्धनाचार्य, जगन्नाथ, और जयदेव से प्रभावित रहे, परन्तु विद्यापति जी ने अपनी काव्य प्रतिभा में जो नवीनता जोड़ दी जिससे यह कहीं–कहीं इन कवियों से भी आगे निकल गये। कालिदास से लेकर जयदेव तक के संस्कृत साहित्य में जनसमृद्धि और विलासी जीवन का चित्र मिलता है। जो कालिदास के काव्यों से उत्तरोत्तर अधिक विलासी दिखाई पड़ता है। विद्यापति के काव्य पर इन्हीं विलासी प्रणय चित्रों का प्रभाव देखने को मिलता है।

इन कवियों के साथ विद्यापति का तुलनात्मक अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है। कालिदास मेघदूत जैसे निरहकाव्य और श्रृंगारतिलक जैसे श्रृंगारिक काव्य के श्रेष्ठ रचयिता माने जाते है। विद्यापति ने न केवल कालिदास द्वारा रचित ग्रंथों का अध्ययन किया बल्कि इनके भावों का ग्रहण कर और सरस बना दिया। श्रृंगारतिलक के श्लोक के साथ विद्यापति के पदों की तुलना करने पर विद्यापति के पदों की सरसता आँकी जा सकती है।

"यामिन्येषा बहुलजलदैर्बद्ध भीमान्धकारा।
निद्रां यातो मन पतिरसौ क्लेिितः कर्मदुः खैः।।
बाला चाहं मनसिजभयात प्राप्तग

अर्थात् किसी नायिका के घर में एक पथिक सोया हुआ है। नायिका उससे कह रही है, हे पथिक निद्रा को छोड़ो क्योंकि यह रात है। बादलों के घिर जाने के कारण भयंकर अंधकार है, भाग्यदोष से दुःखी होकर मेरे पति सो गये है, में बाला हूँ, कामदेव के भय से मेरा शरीर काँप रहा है, और इस गाँव में चोरों का उपद्रव भी है। यही वर्णन विद्यापति के पद में नवीनता लिए दर्शनीय है।

"हम जुबति पति गेलाह विदेस लग नहि बसए पलउसिहु लेश।।
सासु ननद किछुओ नहि जान। आँखि रतौंधी सुनए न कान।।
जागह पथिक जाह जनु भोर। राति अन्हार गाम बड़ चोर।।
सपनेहुँ भाँरि न देअ कोटवार। पओलहु लोते न करए विचार।।
नृप इथि काहु करए नहि साति। पुरूष महते रह सरब जाति।।
भनइ विद्यापतित्यादि।"

अर्थात् मैं युवती, पति विदेश चले गये है, पास में पड़ोस में लेशमात्र कोई भी नहीं है, घर में केवल सास है, जो कुछ नहीं समझती है, उसे रतौंधी है तथा कान से बहरी है, हे पथिक जागो सवेरे मत जाओ, क्योकि रात अँधेरी है और यह गाँव बड़ा चोर है।

कोतवाल भूलकर भी पहरा नहीं देता, यहाँ कोई किसी का ध्यान नहीं रखता है, राजा अपराधियों को दण्ड नहीं देता। इस गाँव

के सब महान पुरुष हमारी ही जाति के है। श्रृंगारतिलक में कवि नायिका को पति पास ही सोया हुआ बताया है, जिससे जाग जाने की आशंका से रस की क्षति होती है। विद्यापति ने इस कमी को परखा और अपने पद में इसे दूर किया, उन्होंने पति को विदेस भेजा, सास को भी अँधी बहरी, मूर्ख बता कर दूर कर दिया तथा कोतवाल के पहरे का डर भी नहीं रहने दिया, यही नहीं राजा का डर तथा विरादरी का भय भी नहीं छोड़ा। इस प्रकार विद्यापति के पद में एक निःशंक वातावरण की सृष्टि की है, यदि "श्रृंगारतिलक" का वर्णन रसाभास के योग्य है, तो विद्यापति का वर्णन पूर्ण रसानुभूति का चरमोत्कर्ष हैं, सम्पूर्ण पद में विद्यापति का निरीक्षण अधिक व्यापक है।

इसी प्रकार सस्कृत के महाकवि माधव के सद्यःस्नाता नायिका का वर्णन विद्यापति ने समान रूप से ग्रहण ना करके अपनी वाकचारूता का प्रयोग किया है, सद्यःस्नाता नायिका का कवि 'माधव' द्वारा वर्णन–

"वासांसि न्यवसत यानि योषिस्ताः
शुभ्राभ्रद्युतिमिस्हासि तैर्मुदव।
अल्पाक्षुः स्नषनलज्जानि यानि स्थूलाश्रु स्रुतिभिररोदि तैः शुचेत।।

इस वर्णन में कवि माधव की स्त्रियों ने नये सफेद वस्त्र धारण किये है, वह वस्त्र
खुशी से हँसने लगे (अर्थात् वस्त्र की धवलता ही उनकी हँसी है) और जिन वस्त्रों का परित्याग किया वह शोक से व्याकुल हो आँसू बहाने लगे, (भीगे वस्त्रों से जल का गिरना ही उनका आँसू बहाना है। कुछ इसी प्रकार के भाव विद्यापति की इन पंक्तियों में दृष्टव्य है–

"ओनुकि करत चाहि किथ देहा। अबिह छोड़ब मोहि तेजब नेहा।।
ऐसन रस नहि पाओब आरा। इथे लागि रोइ गये जलधारा।।

इस वर्णन में नहाने से भींग जाने के कारण वस्त्र देह से चिपक जाते है, और उनके छोरों से पानी निकलता है। इन्हीं दो बातों को लेकर विद्यापति ने यह उत्प्रेक्षा की है, कि वस्त्र अपने को छिपाना चाहता है। वस्त्र का देह से चिपकना ही उसके छिपाने का प्रयास है।इसलिए कि उसे आशंका हो गयी है, कि नायिका उससे प्रेम करना अर्थात उसे धारण करना छोड़ देगी यह सोचकर वस्त्र रो रहा है। (वस्त्र से जल गिरना ही उसका रोना है) माधव और विद्यापति के वर्णनों में एक ही दृश्य को एक ही उपमा से वर्णित किया गया है, किन्तु कवि माधव अपनी भाषा से काव्य में वस्त्रों के आँसू दिखाकर ही मौन हो जाते है, किन्तु विद्यापति भाषा की मधुरता में रसभर कर उसका कारण भी उजागर करते है। कारण का वर्णन करने से ध्वन्यार्थ को किसी प्रकार की ठेस नहीं पहुँचती, वरन् नायिका का रुप सौन्दर्य और भी निखर गया है। यदि यह कहा जाय, कि इन वर्णनों में विद्यापति का वर्णन अपेक्षाकृत अधिक सरस और प्रभावपूर्ण है तो अति उक्ति न होगी।

संस्कृत के जिस कवि से विद्यापति की काव्य–भाषा से सबसे ज्यादा ग्रहण किया, वह है **जयदेव**, कवि जयदेव के काव्य के अधिकांश गुण विद्यापति के काव्य में मिलने के कारण ही **"अभिनव जयदेव"** की उपाधि से विभूषित किया गया। किन्तु कहीं–कहीं कवि विद्यापति अपनी भाषा में जयदेव को भी पीछे छोड़ गए है। जयदेव के विरह पीड़ा से व्याकुल नायक की कामदेव के प्रति यह उक्ति है–

"ह्रदि विलसता हारो नामं भुजंगमनायकः कुबलयदल श्रेणी कण्ठे न सा गरलद्युतिः। मलयजरजो नेदं भस्म प्रियारहिते मयि, प्रहर ने हरभ्रान्तयाऽनंग क्रुद्धा किमु धावसि।"

अर्थात् हे कामदेव! यह सर्पराज नहीं है, अपितु विरह वेदना से व्याकुल ह्रदय को शीतल करने के लिए कमलनाल है। यह विष नहीं है। गले में नीले कमल का हार है, यह भस्म नहीं है, चन्दन की रज है इसलिए भूल से मुझे शिवजी समझ कर बाण मत चलाओ ओर क्रोधाभिभूत होकर मेरी ओर मत दौड़ो। इस वर्णन को विद्यापति ने अपने शब्दों में इस प्रकार अंकित किया है–

"कत न बेदन मोहि देसि मदनोसि मदना हर नाहि मोंहि जुबति–जना। विभूत–भूषन नहि चाननक नेरु बघछाल नहिं नेतक बसनू।
नहि मोर जटाभार चिरकुरक बेनी सुरसरि नहि मोरा कुसुमक सेनी। नहि मोरा कालकूट मृगमद चारु फनपति नहि मोरा मुक्ता हारु। भनइ विद्यापति सुन देव कामा। एक पय दूखन नाम मोर बामा।।

इस पद में विद्यापति के शब्दों का प्रयोग अधिक सार्थक और चमत्कारिक है। कामदेव के लिए जयदेव ने 'अनड्.ग' शब्द का प्रयोग किया है और विद्यापति ने "मदन" का, ''अनड्.ग'' में शिव के प्रति कामदेव की शत्रुता निहित है। 'मदन' का अर्थ है, प्रसन्न करने वाला, किन्तु अपने नाम के विपरीत वह दे रहा है "दुख"। विद्यापति की नायिका अपने में दुःख देने वाला एक ही "पय" अर्थात अवगुण देखती है आरै वह है नाम की समानता "वामा", विद्यापति के इस प्रयोग में यही सार्थकता है, जयदेव ने विरह पिड़ित नायक को खड़ा किया है और विद्यापति ने कामबाण से व्याकुल युवती के द्वारा नाम सादृश्य के कारण प्रहार करने

वाले काम की अविवेकता प्रकट कर अपनी रसिकता का परिचय दिया हैं यहाँ पर विद्यापति ने जयदेव के भावों को ग्रहण करके अपने काव्य को अपनी प्रतिभा और कवित्त शक्ति के निकष (कस कर) पर और अधिक हृदयग्राही व चमत्कारिक बना दिया है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है, कि विद्यापति अपने पूर्ववर्ती संस्कृत कवियों से अत्यन्त प्रभावित रहे। इन्होंने उन कवियों की भावनाओं को अवश्य ग्रहण किया, किन्तु अपनी काव्य–भाषा को अपनी प्रतिभा और मौलिकता के तटों में बाँध कर उन्हें एक नवीन प्रवाह की ओर प्रशस्त किया है, अन्य कवियों के भावों की आधार–शिलाओं पर अपने काव्य के भव्य प्रसादों का निर्माण करना महान और निष्णात कवियों से ही सम्भाव्य है, विद्यापति की महानता का रहस्य इस सम्भाव्यता में निहित है।

रस सिद्ध कवि विद्यापति

विद्यापति के गीत मिथिला के जन–जीवन में, विशेषतः नारियों के कलकंठव में इतने रच–बस गए हैं कि वहाँ के सांस्कृतिक जीवन का कोई भी संस्कार या अनुष्ठान इनके बिना अपूर्ण माना जाता है। मिथिला की ऐसी कौन–सी स्त्री होगी जिसे विद्यापति के दस–बीस गीत कंठस्थ न हों? बंगाल में तो इनके गीत भक्तप्रवर चैतन्य महाप्रभु को इतने प्रिय लगे कि उनको गाते–गाते भाव–विभोर होकर वह मूर्च्छित हो जाते थे। चैतन्यदेव के भक्तों ने भी विद्यापति के गीतों को इसी भावना से अपनाया। बंगाल में कई कवियों ने विद्यापति के अनुकरण पर काव्य–रचना की।

यशोधर जैसोर के एक बंगाली कवि बसन्तराय ने तो अपना उपनाम ही 'विद्यापति' रख डाला। बंगाल में विद्यापति के गीतों की इस लोकप्रियता ने आधुनिक युग में इस विवाद का रूप ले लिया, कि विद्यापति मैथिली के कवि हैं या बँगला के? उन्हें बंगला भाषा या कवि सिद्ध करने के लिए कई प्रमाण जुटाये गए। परंतु अब यह विवाद समाप्त हो चुका है। बंगीय विद्वानों ने भी यह स्वीकार कर लिया है, कि विद्यापति बंगला के नहीं, मैथिली के ही कवि हैं। मैथिली को हिन्दी से भिन्न भाषा–मूल से निस्मृत बतलाकर यह प्रश्न भी उठाया जाता रहा है, कि विद्यापति को, जो मैथिली के कवि हैं, हिन्दी का कवि क्यों माना जाय? जार्ज ग्रियर्सन ने मैथिली को हिन्दी से भिन्न भाषा इस आधार पर माना है, कि बिहारी, जिसमें भौजपुरी, मगही और मैथिली सम्मिलित हैं, मगधी अपभ्रंश से निकली हैं। जबकि पश्चिमी हिन्दी शौरसेनी अपभ्रंश से। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जार्ज ग्रियर्सन की इस मान्यता का प्रतिवाद करते हुए लिखा है कि 'केवल भाषाशास्त्र की दृष्टि से कुछ प्रत्ययों के आधार पर ही साहित्य–सामग्री का विभाग नहीं किया जा सकता। कोई भाषा कितनी दूर तक समझी जाती है, इसका विचार भी तो आवश्यक होता है।' मैथिली और हिन्दी की शब्दावली की एकता के आधार पर शुक्ल जी ने मैथिली को हिन्दी ही माना है। उनके शब्दों में, जिस प्रकार हिन्दी साहित्य 'बीसलदेव रासो' पर अपना अधिकार रखता है, उसी प्रकार विद्यापति की 'पदावली' पर भी'।

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने आचार्य शुक्ल के मत का समर्थन करते हुए लिखा है,

"वस्तुतः हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत पुरानी साहित्यिक प्राकृतों में से बहुतों के परकालीन साहित्य का समावेश हो जाता है। हिन्दी साहित्य जिस प्रकार शौरसेनी प्राकृत से निकली ब्रजभाषा और शौरसेनी एवं पैशाची के मेल से उठ खड़ी हुई खड़ी बोली के साहित्य को अपने अंतर्गत समझता है, उसी प्रकार शौरशैनी और मागधी के मेल अर्थात् उन दोनों की विशेषताओं को वहन करने वाली अर्द्ध–मागधी से निकली 'अवधी' के साहित्य को भी। इसी प्रकार मागधी से निकली मैथिली का साहित्य भी उसी का साहित्य समझा जाएगा, क्योंकि शब्दावली के विचार से वह हिन्दी के ही निकट है।

आचार्य मिश्र ने केवल भाषा की प्रकृति और प्रवृत्ति के कारण ही विद्यापति की 'पदावली' को हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत रखने की बात नहीं कही है, वरन् साहित्य–परंपरा की दृष्टि से भी वह विद्यापति को हिन्दी की परंपरा में ही देखते हैं। आचार्य विश्वप्रसादयह मानते हैं, कि मध्यकाल का हिन्दी साहित्य जिस सरणि पर चला, वह 'पृथ्वीराज रासो' और 'बीसलदेव रासो' की परंपरा नहीं थी, वरन् विद्यापति की ही सरणि थी। विद्यापति ने जिन गीतों का निर्माण किया, उन गीतों की परंपरा उसी रूप में भक्तिरंजित होकर कृष्णभक्त कवियों में दिखाई देती है। इसी तरह श्रृंगार रस के क्षेत्र में विद्यापति द्वारा डाली गई लीक (पगदण्डी) पर श्रृंगार–काल रीतिकाल के कवि चले। 'विद्यापति ने आगे आने वाले हिन्दी साहित्य को यहाँ से वहाँ तक प्रभावित किया।

भक्ति व श्रृंगारिक कवि :

विद्यापति के संबंध में यह विवाद तो अब शांत हो गया है, कि वह बंगला के कवि थे या मैथिली के और उनका जन्म बंगाल में हुआ था या मिथिला में। बंगला विद्वानों तक ने स्वीकार कर लिया है, कि विद्यापति मैथिली के कवि हैं और उनका जन्म मिथिला प्रदेश में हुआ था। परंतु उनके संबंध में एक विवाद अभी तक बना ही हुआ है, कि वह भक्त कवि थे या श्रृंगारी कवि। उनके संप्रदाय के संबंध में भी विवाद है, कि वह वैष्णव थे, या शैव या शाक्त, या पंचदेवोपासक? सर्वप्रथम हम उस पक्ष के मत को जान लें, जो उनको भक्त कवि मानता है।

विद्यापति को भक्त बतलाने वालों में अग्रणी हैं, जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन। उनका कथन है। "राधा और कृष्ण वस्तुतः प्रतीक हैं।

SUSHANT UNIVERSITY ORGANIZED INTERNATIONAL CONFERENCE ON
"ADVANCES IN MULTIDISCIPLINARY RESEARCH AND INNVOATION" ICAMRI-2023
ON 28-29TH OCTOBER 2023
INTERNATIONAL ADVANCE JOURNAL OF ENGINEERING, SCIENCE AND MANAGEMENT (IAJESM)
July-December 2023, Submitted in October 2023, iajesm2014@gmail.com, ISSN -2393-8048
Multidisciplinary Indexed/Peer Reviewed Journal. SJIF Impact Factor 2023 =6.753

राधा जीवात्मा से मिलन के लिए निरंतर प्रयत्नशील हैं। यह प्रयत्न तक तब वाहित रूप से चलता रहता है जब तक जीवात्मा परमात्मा में लय होकर सायुज्य लाभ नहीं कर लेता ... विद्यापति के काव्य में दूती गुरु का प्रतीक है। यह दूती जीवात्मा या प्रेमिका को निरंतर परमात्मा से मिलने के लिए प्रेरित करती रहती है। यही नहीं, इस अभिसार या प्रेम–मिलन के प्रत्येक कार्य में वह उसकी सहायता भी करती है।'' अन्यत्र भी वह कहते हैं,

''विद्यापति के पद लगभग सबके सब वैष्णव पद या भजन हैं ... जिस प्रकार सोलोमन के गीतों को ईसाई पादरी पढ़ा करते हैं, उसी प्रकार भक्त हिंदू विद्यापति के चमत्कारिक पदों को पढ़ते हैं और जरा भी कामवासना का अनुभव नहीं करते।''ग्रियर्सन के मतानुसार, 'पदावली' में 'पूजक और पूज्य के प्रेम को राम और कृष्ण का रूप दे दिया गया है।'

विद्यापति की पदावली के संग्राहक, बंगीय विद्वान श्री नगेंनाथ गुप्त का मत है, कि ''विद्यापति की राधाकृष्ण–पदावली का सारांश यही है, कि जीवात्मा परमात्मा को खोज रही है और एकांत स्थान में परमात्मा से मिलने के लिए चिंतित है।'' श्री गुप्त ने सारी पदावली को आध्यात्मिकतापूर्ण व्यंगार्थमय रचना घोषित किया है। प्रसिद्ध विद्वान, दार्शनिक एवं कवि ए. के. कुमार स्वामी ने 'सांग्स ऑव विद्यापति' में लिखा है'विद्यापति का काव्य गुलाब है गुलाब। यह आनंद–निकुंज है। यहाँ हमें स्वर्ग के दर्शन होते हैं। वृंदावन की कृष्णलीला शाश्वत है। वृंदावन मनुष्य का हृदय–देश है।

यमुना का किनारा इस संसार का प्रतीक है, जो राधा और कृष्ण अर्थात् जीव और ईश्वर की लीला–भूमि है। बंसी की आवाज अदृश्य सत्ता की आवाज है, जीव के लिए परमात्मा की ओर अग्रसर होने का आह्वान है।''

डॉ. जनार्दन मिश्र ने कहा है कि ''विद्यापति के समय में रहस्यवाद का मत जोरों पर था, उसके प्रभाव से बचकर निकलना और किसी अधिक निष्कंटक मार्ग का अनुसरण करना, उन्हें शायद अभीष्ट न था, अथवा अभीष्ट होने पर भी तुलसीदास की तरह अपने वातावरण के विरुद्ध जाने की शक्ति इनमें न थी। इसलिए स्त्री और पुरुष के रूप में जीवात्मा और परमात्मा की उपासना की जो धारा उमड़ रही थी, उसमें उन्होंने अपने को बहा दिया।'' मिश्र जी ने अपने मत की पुष्टि में विद्यापति का निम्न पद दिया है–

'एक दिन छलि नवनीत रे, जल मिन जेहन पिरीत रे,
एकहिं वचन विच भेल रे, हँसि पहु उतरो न देल रे,
एकहि पलंग पर कान्ह रे, मोर लेख दूर देस भान रे।'

इस पद में उन्होंने पलंग को शरीर माना है और उस पर शयन कर रहे राधा–कृष्ण को जीवात्मा तथा परमात्मा। आत्मा के रूप में परमात्मा का निवास हृदय में रहता है, परंतु अज्ञानी जीव के लिए वह न जाने कितनी दूर प्रतीत होता है। मिश्र जी ने माना है कि इस पद में जीवात्मा के अहंकार और ग्लानि का चित्रण हुआ है। उनके मत में विद्यापति की पदावली आध्यात्मिक विचार तथा दार्शनिक गूढ़ रहस्यों से परिपूर्ण है।

विद्यापति को कृष्ण–भक्तों की परंपरा में नहीं समझना चाहिए।'' विद्यापति के शृंगारिक गीतों में अध्यात्म–भाव के दर्शन करने वालों पर व्यंग्य करते हुए वह कहते हैं ''आध्यात्मिक रंग के चश्मे आजकल बहुत सस्ते हो गए हैं। उन्हें चढ़ाकर जैसे कुछ लोगों ने 'गीत गोविंद' के पदों को आमयात्मिक संकेत बताया है, वैसे ही विद्यापति के इन पदों को भी। सूर आदि कृष्ण–भक्तों के नृंगारी पदों की भी ऐसे लोग आध्यात्मिक व्याख्या चाहते हैं। पता नहीं, बाल–लीला के पदों का वह क्या करेंगे?'

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र भी शुक्ल जी से सहमत हैं, 'विद्यापति शैव थे। पर अपनी देश भाषा की रचनाओं में उन्होंने श्रीकृष्ण और राधिका की प्रेम–लीलाओं का वर्णन किया है। श्रीकृष्ण और राधिका रीतिशास्त्र के ग्रंथों में श्रृंगार रस के काव्य–सिद्धी आलम्बन माने गए हैं। अतः विद्यापति के राधा–कृष्ण श्रृंगार या काव्य के देवता हैं, भक्ति के नहीं।'' मिश्रजी ने अन्यत्र भी लिखा है, ''सब मिलाकर विद्यापति की रचनाओं पर विचार करने से यही निष्कर्ष निकलता है कि वह मूलतः साहित्यिक मनोवृत्ति के व्यक्ति थे, भक्तों की श्रेणी में उन्हें बिठाना विमर्शकारिणी बुद्धि का परिचय नहीं है। रीतिकाल में जो प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं, उन सब के संकेत बीज रूप में विद्यापति की रचनाओं में पाए जाते हैं। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि विद्यापति दरबारी कवि थे, अतः रीतिकालीन कवियों से उनका जितना अधिक साम्य अथवा सात्म्य हो सकता है उतना भक्तिकाल के कर्त्ताओं से नहीं।'' मैथिल विद्वान् महामहोपाध्याय डॉ. उमेश मिश्र ने कहा है, 'कवि विद्यापति राधा–कृष्ण के सच्चे प्रेम से अपरिचित नहीं थे, किंतु सच्चा प्रेम जिसे हम राधा–कृष्ण की भक्ति कहते हैं, कवि ने अपनी इन कविताओं में कहीं नहीं दिखलाया।'' डॉ. रामकुमार वर्मा भी विद्यापति की राधा के प्रेम को भौतिक और वासनामय प्रेम ही मानते हैं।विद्यापति को भक्तों की श्रेणी में बैठाने और उनकी 'पदावली' को कृष्ण–भक्तिकाव्य घोषित करने की प्रवृत्ति का आरंभ जार्ज ग्रियर्सन से नहीं होता। हम पहले भी चर्चा कर चुके हैं कि मिथिला और बंग प्रदेश के भौगोलिक सामीप्य के कारण विद्यापति के गीत बंगाल में संक्रमित हो गए और लोकप्रिय बन गए। विद्यापति के समसामयिक बंगला कवि चंडीदास के गीत भी, जिन पर विद्यापति के भाव, भाषा

और शैली का बहुत प्रभाव पड़ा था, बंगाल में खूब प्रचलित हुए। इन कवियों से लगभग दो सौ वर्ष बाद, जब बंगाल में भक्त–प्रभु चैतन्यदेव का आविर्भाव हुआ, तब तक इन दोनों कवियों के बहुत–से गीत लोककंठ में अपना स्थान बना चुके थे। विद्यापति की काव्य–भाषा का भी बहुत–कुछ बंगलाकरण हो चुका था। चैतन्यदेव को विद्यापति और चंडीदास के गीतों की सरसता बहुत भायी। चैतन्य बड़े भावुक और संवेदनशील थे।

कि कहब हे सखि आनंद और चिर विने माधव मंदिरे मो।

इस पद को गा–गाकर तो महाप्रभु चैतन्य मूर्छित हो जाया करते थे। चैतन्य को जिस कवि ने इतना भाव–विभोर कर दिया हो, वह भला उनके भक्तों में क्यों न आदृत होता! फलतः विद्यापति 'वैष्णव कवि–चूड़ामणि' प्रसिद्ध हो गए। उनके गीत कीर्तन के लिए भी प्रयुक्त होने लगे। **जार्ज ग्रियर्सन और श्री नगें नाथ गुप्त** आदि ने विद्यापति के गीतों को इसी परिवेश में परखने का प्रयास किया। विद्यापति के गीतों पर पूर्वाग्रहरहित होकर दृष्टि डालने पर यह बात स्पष्ट हुए बिना न रहेगी, कि उनके गीत 'वैष्णव भजन' नहीं हैं, जैसा कि जार्ज ग्रियर्सन ने माना है और न उनके गीतों में राधा और कृष्ण क्रमशः जीवात्मा और परमात्मा के ही प्रतीक हैं, जैसा कि श्री नगेंनाथ की मान्यता है, इस संबंध में पं. शिवनंदन ठाकुर का मत ध्यातव्य है, ''विद्यापति के करीब–करीब 200 वर्ष बाद कीर्त्तन की सृष्टि हुई।उनके समय में विद्यापति ने फरमाइश करने वाले राजा को श्याम और उनकी प्रिय पत्नी को राधा मानकर आदि रस श्रृंगार का गीत लिखा। विद्यापति कीर्त्तन लिखने के लिए बैठे थे, राधा–कृष्ण की प्रेम–पुस्तक लिखने के लिए नहीं बैठे थे उन्होंने भिन्न–भिन्न समयों पर, भिन्न–भिन्न स्थानों में, भिन्न–भिन्न राजाओं की आज्ञा के अनुसार गीत लिखे थे।''

विद्यापति की 'पदावली' में कांता भाव की भक्ति का स्वरूप देखना और उनके पदों को सूरदास के पदों की श्रेणी में बैठाना तथा उनमें श्रीमद्‌भागवत और ब्रह्मवैवर्त्त पुराणों में प्रतिपादित लीला–माधुर्य की भक्ति का निरूपण मानना प्रकृष्ट कल्पना है। स्वयं विद्यापति को यह उद्दिष्ट नहीं रहा। सूरदास और अष्टछाप के अन्य कवि श्रीवल्लभाचार्य के पुष्टिमार्गी भक्ति–संप्रदाय में दीक्षित थे और उनकी भक्ति प्रेमलक्षण थी, जिसमें श्रीकृष्ण का लीलागायन अपने–आप में एक ध्येय है। सूरदास आदि ने अपने संप्रदाय के उपास्यदेव के रूप में श्रीकृष्ण की स्तुति की है और पद के अंत में 'सूरदास के प्रभु' आदि शब्दों का व्यवहार किया है, पर विद्यापति के पदों में ऐसी पद्धति नहीं है। वहाँ तो 'राजा शिवसिंह रूपनारायण लखिमा देइ रमान' तथा अन्य राजा–रानी ही उनके समस्त श्रृंगार–चित्रण के`ष्टा और भोक्ता बनाए गए हैं! विद्यापति के राधा–कृष्ण श्रृंगार के ही देवता हैं, भक्ति के नहीं, जबकि सूरदास आदि कृष्णभक्त कवियों में वो भक्ति के देवता हैं।

'पदावली' में वर्णित कृष्ण श्रृंगार रस, के आलम्बन नायक हैं। वह 'रस आगर नागर' हैं, 'रति सुविसारद' हैं, 'रसिक सुजान' हैं। कृष्ण का श्रृंगार–आलम्बनत्व कोई नई कल्पना नहीं है, इसकी परंपरा पहली शती की हाल–रचित 'गाथा सतसई' से मिलने लगती है। 'पदावली' में जिन राधा–कृष्ण का चित्रण है, वह जीवात्मा–परमात्मा नहीं, सामान्य नायक–नायिका ही हैं। विद्यापति को भक्त–कवि प्रमाणित करने वाले **डॉ. जयनाथ नलिन** ने स्वयं स्वीकार किया है कि **''विद्यापति का कृष्ण भक्ति का नहीं, अपेक्षाकृत श्रृंगार का आलम्बन अधिक है।विद्यापति के काम–प्रधान कृष्ण के रूप ने परवर्ती भक्त और श्रृंगारी कवियों को बहुत प्रभावित किया। सूर और अन्य अष्टछापी कवियों ने इस रूप को बड़े उत्साह से अपनाया। रीतिकालीन काव्य पर यह ऐसा छाया, कि काव्य में राधा–कृष्ण का नाम भर रह गया। इनके नाम की ओट में कविजन अपने हृदय की उत्तेजक, निर्बाध और प्यासी वासना से प्रेरित हो ऐसे खुलकर खेले कि नैतिकता और शालीनता उनकी बरसाती श्रृंगार–धारा में सदा के लिए बह गई।''** महाकवि जयदेव ने अपने 'गीत गोविंद' में श्रृंगार और भक्ति को परस्पर समन्वित भावधारा के रूप में ग्रहण किया था

'यदि हरिस्मरणे सरसं मनो यदि विलासकलासु कुतूहलम्। मधुरकोमलकांतपदावली श्रृणु तदा जयदेवसरस्वतीम्।।'

उन्होंने एक ही तश्तरी पर हरि–भक्ति और विलास–कला को रखकर अपने श्रोताओं के सामने पेश कर दिया था! किन्तु विद्यापति ने ऐसा कोई प्रतिवेदन नहीं किया। विद्यापति के काव्य में जहाँ श्रृंगार है, वहाँ वह उन्मादक एवं नग्न है, जहाँ भक्ति है, वहाँ वह भी अमिश्रित है। श्रृंगार को भक्ति के पुष्पों से सजाने की आवश्यकता उन्हें नहीं अनुभव हुई। विद्यापति के समग्र पद–साहित्य का अवलोकन करने पर पता चलता है कि जिन पदों को भक्तिपरक पदों की संज्ञा दी जा सकती है, वह इस प्रकार है–

'ससन–परस खसु अम्बर रे देखत धनि देह।'
'तितल बसन तनु लागू, सुनिहू क मानस मनमथ जागू।'
'सुरत समापि सुतल वर नागर पानि पयोधर आपी।'
'नहि नहि करए नयन कझोर।।'
'कुच–कोरक तब कर गहि लेल। काँच बदरि अरुनिम रुचि भेल।।

'हमर साथ जों हेरइ मुरारि।
लहु लहु तब हम पारब गारि।।''

आदि पदों को और विपरीत रति–संबंधी पदों को हम भक्ति की किस श्रेणी में गिनें? विद्यापति दरबारी कवि थे, इसलिए राज–रुचि और दरबारी वातावरण का ध्यान रखकर उन्होंने समय–समय पर जिन प्रकीर्ण पदों की रचना की, वह रूप–चित्रण और प्रेम–वर्णन से ही अधिक संबंधित हैं। उनमें श्रृंगार का उन्मुक्त, उन्मद चित्रण है। ऐसे चित्रणों में प्राकृत नायक कृष्ण का रति–विग्ध रूप व्यंजित हुआ है। दरबारी विलासिता के रत्यात्मक प्रसंगों को कवि ने राधा–कृष्ण के नाम के साथ सम्बन्धित कर दिया है। जयदेव की भाँति विद्यापति को न तो श्रृंगार में भक्ति को आरोपित करने की आवश्यकता हुई, और न रीतिकालीन कवियों की भाँति अपने श्रृंगार–चित्रण को राधिका–कान्हाके 'सुमिरन' का बहाना बताने की।

वस्तुतः विद्यापति के काव्य का मूलाधार राधा है, कृष्ण उसके संदर्भ में ही सार्थक हैं। उनकी 'पदावली' में 'राधा–चरित अपार' है। श्रृंगार–चित्रण में कवि का ध्यान राधा पर ही अधिक है, कृष्ण पर कम। अतः उनकी पदावली 'हरि–स्मरण' को ध्येय बनाकर नहीं चली। इसका अर्थ यह नहीं है कि विद्यापति की 'पदावली' में भक्ति नहीं है, या जहाँ भक्ति का रस छलका है, वहाँ निर्वेद, आत्म–निवेदन, स्मरण और स्तुति में कहीं कोताही है। उदाहरण के तौर पर लीजिए। देवी की स्तुति करते हुए कवि कहता है–

'कनक–भूधर–शिखर–वासिनि, चन्द्रिकाचय चारु हासिनि, दशन कोटि विकास, बंकिम तुलित चेंकले।' इत्यादि

भोलानाथ, अवढरदानी शिव से यह प्रार्थना करते हुए, कि उस जैसे 'पतित' को वहकभी न भूलें और अपने चरणों में शरण दें, कवि विद्यापति कहते हैं–

'सिब हो, उतरब पार कओन बिना।'
लोढ़ब कुसुम तोरब बेलपात, पुजव सदासिव गौरिक सात।....
भन विद्यापति सुनु हे महेस, निरमान जानि के हरहु कलेस।

'हर जनि बिसरब मो ममिता, हम नर अधम परम पतिता। तुअ सन् अधम उधार न दोसर, हम सन् जग नहि पतिता। भन विद्यापति सुकवि पुनीत मति, संकर बिपरीत बानी। असरन सरन चरन सिर नाओल, दया करु दिअ सुपलानी।।

'कखन हरब दुख मोर हे भोलानाथ। दुखहि जनम भेल दुखहि गमाएब, सुख सपनहु नहि भेल, हे भोलानाथ। भन विद्यापति मोर भोलानाथ गति देहु अभय बर मोहि, हे भोलानाथ।'

माधव कृष्ण को तुलसी–दल और तिल के साथ अपनी देह को समर्पित करते हुए कवि अपने को भवसागर से तार देने की प्रार्थना करता है–

'माधव, बहुत मिनति कर तोय।

दए तुलसी तिल देह समर्पिनु दया जनि छाड़वि मोय। भनइ विद्यापति अतिसय कातर, तरइन इह भव–सिंधु। तुअ पद–पल्लव करि अवलम्बन, तिल एक देह दिनबंधु।।'

सांसारिक माया–मोह की छलना की असारता को समझ चुकने के बाद कवि को सारा संसार अंधकारमय लगता है। पूरा जन्म उसने राग–रंग में बिता दिया, अब उसका उद्धार कैसे होगा? वह सागर में लहरों की भाँति माधव के अस्तित्व में अपने को विलय कर देना चाहता है–

'तातल सैकत बारि–बिंदु सम, सुत–मित–रमनि–समाज। तोहे बिसारि मन ताहे समरपिनु, अब मझु हक कौन काज।। माधव, हम परिनाम निरासा।

तुहुँ जगतारन दीन दयामय, अतअ तोहर बिसवासा।। कत चतुरानन मरि मरि जाओत, न तुअ आदि अवसाना।
तोहे जनमि पुन तोहे समाओत, सागर लहरि समाना।।'

पतित–पावनी गंगा से भी वह प्रार्थना करता है कि वह उसे अंत समय मृत्युकाल में न बिसारें–

'बड़ सुख सार पाओल तुअ तीरे। छोड़इत निकट नयन बह नीरे।। कर जोरि बिनमओं विमल तरंगे। पुन दरसन होए पुनमति गंगे।।

एक अपराध छेगब मोर जानी। परसल माय पाए तुअ पानी।। कि करब जप–तप जोग धेआने। जनम कृतारथ एकहि सनाने।। भनइ विद्यापति समदओं तोहि। अंतकाल जनु बिसरहु मोही।।'

इन पदों में विद्यापति की भक्ति शतमुखी होकर प्रवाहित हो रही है। कवि की कातरता, उसका दैन्य, उसका आत्म–समर्पण, भगवद्कृपा पर उसकी अटूट निष्ठासब कुछ वैसी ही है, जैसा किसी भी भक्त कवि से अपेक्षित है। उनके भक्तिपरक गीतों में–

'मेरी भव बाधा हरौ राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाईं परै स्याम हरित दुति होई।।'

विद्यापति के काव्य में प्रकृति का वर्णन आलम्बन और उद्दीपन दो ही रूपों में मिलता है, परंतु संयोग–पक्ष में कवि ने प्रकृति के उपादानों का अधिक सहयोग लिया है, वियोग–पक्ष में कम। जो प्रकृति चाँदनी रातों में, वसंत की मधुरिमा, पुष्पों की सुगंध और भ्रमरों की गुंजार से संयोगिनी नायिका को हुलसाती–उमगाती है, वही प्रकृति बदली हुई परिस्थितियों में विरहिणी नायिका को कितने ही रूपों में सताती–तड़पाती है। दोनों ही स्थितियों में कवि विद्यापति का प्रकृति–प्रेम अक्षुण्ण रहा है। प्रकृति का उद्दीपन रूप में वर्णन काव्य–परंपरा का विषय बन गया था, अतः विद्यापति ने उस पद्धति को अपनाया राजाश्रय में रहने के कारण भी उनके लिए यह आवश्यक हो उठा।

निष्कर्ष–

रीतिकाल के कवियों को भी ऐसी परिस्थिति से गुजरना पड़ा था और उनके काव्य में भी प्रकृति मुख्यतः उद्दीपन–रूप में ही आई, किंतु विद्यापति और उनमें एक बड़ा अंतर यह है, कि रीतिकालीन कवि जहाँ प्रकृति–प्रेमी नहीं, वहाँ विद्यापति प्रकृति के सच्चे आराधक हैं। उन्होंने प्रकृति–प्रेम के दर्पण में नायिका के सौंदर्य, उसके संयोग और उसके वियोग के दर्शन किए। समग्रतः विद्यापति ने अपने काव्य में समाज में अपने युग के समाज और जनजीवन के अनेक यथार्थ और सजीव चित्र प्रस्तुत किए हैं। स्पष्ट है कि वह अपने समाज के प्रति पूर्णतः जागरूक थे। भले ही वह दरबारी कवि थे। परन्तु सामाजिक परिवेश उनकी दृष्टि से एक पल को भी ओझल नहीं होता था। यह समझना सरासर गलत है कि विद्यापति किसी लता पुंज में बिहार करने वाले या मात्र दरबार के वातावरण में घिरे हुए कवि थे। विद्यापति दरबारी कवि अवश्य थे, परन्तु वह अपने चारों तरफ के वातावरण के प्रति पूर्णतः जागरूक थे।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

- विद्यापति (रगानाथ झा) साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।
- विद्यापति और उनकी पदावली– सं. कृष्णदेव शर्मा, अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली।
- विश्वकवि विद्यापति–लेखक सीताराम झा 'श्याम' प्रकाशक, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार।
- डॉ. हरद्वारीलाल शर्मा, सुन्दरम, पृ0 73
- कामायनी, श्रद्धासर्ग, पृ0 87
- गीत विद्यापति, पद–865
- महेन्द्रनाथ दुबे, गीत विद्यापति, पद–716
- रामवृक्ष बेनीपुरी, विद्यापति की पदावली, पद–2
- डॉ0 शिवप्रसाद सिंह, विद्यापति, पृ0 125